THE TIMES OF INDIA

Date: 09-09-24

Up with the best

Our para athletes' great showing at Paris is a reminder of need to create more disabled-friendly spaces in India

TOI Editorials

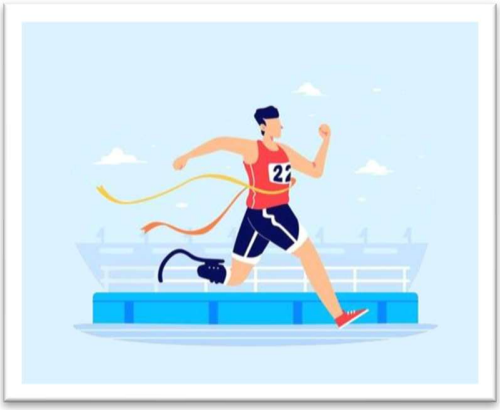

India's excellent performance at the Paris Paralympics is testament to the calibre and dedication of our para athletes. With 29 medals – 7 gold, 9 silver and 13 bronze – our contingent delivered its best ever performance. Even more heartening is the fact that as many as 10 women have done India proud. Each medal winner represents an extraordinary story of triumph in the face of adversity. Take Sumit Antil. He repeated his Tokyo performance, winning a gold in men's javelin (F64). Ditto for shooter Avani Lekhara, who became the first Indian woman to win two Paralympic gold.

Performance turnaround | Paris also reiterates how quickly a country's sporting fortunes can change. As recently as London 2012 and Rio 2016, India had bagged just one and four medals, respectively. Increased funding and provision of resources by the Centre and corporate bodies has clearly made all the difference. This must be carried further since India participated in just 12 of the 22 sporting categories at Paris.

India's unfriendly environment | Amidst this success, let us not forget what our para athletes have had to battle, besides disability, to win glory. For, India remains a disabled-unfriendly country. The Rights of Persons with Disabilities Act, 2016 sought to make all public spaces disabled-friendly in five years, but its implementation has been far from satisfactory. The Centre has even cut budgetary outlays for schemes under the Act. It is hardly a surprise then that private buildings and transport systems have failed to fall in line, even in metro cities. The success of our para athletes should serve as a reminder that changing this would not just allow persons with disabilities to give their best but it is also what the country owes them.

THE HINDU

Date: 09-09-24

Wide open

With more state support, Indian Paralympians are on a high

Editorial

Following the disappointment of several near-misses in the recent Olympics, India's best-ever show of 29 medals for an 18th place finish in the Paris Paralympics is reason to celebrate. From four medals and 43rd spot in Rio 2016 to 19 medals and 24th rank in Tokyo 2020, this is a significant ascent and depicts the Indian Paralympians' constant improvement in sync with the increased government support. Since the challenges are different, it may not be fair to compare the achievements of the para-athletes with those in the Olympics. India's performance in the 2024 Paralympics reflects its para-athletes' quest for excellence despite the unimaginable odds they face. Of the seven gold, nine silver and 13 bronze medals, the majority (17 in all), came from para-athletics. The javelin throwers and high jumpers contributed the most, with four medals in different categories classified as impairments. Para-badminton (five), para-shooting (four), para-archery (two) and para-judo (one) completed the country's medal tally. Shooter Avani Lekhara and javelin thrower Sumit Antil, who set a new Paralympic record, defended their gold medals, high jumper Mariyappan Thangavelu claimed his third successive medal, 17-year-old armless archer Sheetal Devi became the youngest Indian to win a medal and Harvinder Singh won the first para-archery gold.

Preethi Pal bagged India's first-ever track medal as she picked up a bronze in women's 100m T35 event followed by another in 200m and Kapil Parmar captured India's first para-judo medal. Nagaland's 40-year-old Army man Hokato Sema, who shone as a shot putter despite losing a leg in the line of duty in the prime of his youth, cornered glory to underscore the indomitable human spirit. Overall, the spectators' response to the Paralympics 2024 was heart-warming — organisers sold over two million tickets for the Games. The Stade de France witnessed a near-capacity crowd thronging the iconic venue daily to watch and support the heroic efforts. It was a huge encouragement for the 4,400-plus para-athletes competing in 549 medal events in 22 sports and might contribute to the growth and acceptability of para-sports. It complemented the French authorities' attempt to make the Paralympics more inclusive, which is apparent from the emblem, mascot, and motto — Games Wide Open — used for the Olympics. The successful conduct of the Paris Paralympics and the Indians' praiseworthy performance should draw more government and corporate support for these athletes in India to ensure improved shows on the field and a better life as part of the mainstream.

बिज़नेस स्टैंडर्ड

Date: 09-09-24

रचनात्मक स्वतंत्रता का दुरुपयोग गलत

शेखर गुप्ता

आश्वस्त रहिए यह नेटफ्लिक्स पर आई अनुभव सिन्हा की वेबसिरीज 'आईसी-814: द कंधार हाइजैक' पर आधारित एक और आलेख नहीं है। बल्कि यह आलेख समकालीन इतिहास के किसी भी अध्याय या व्यक्तित्व पर आधारित कला, साहित्य, सिनेमा या टीवी सिरीज से जुड़ी भयावह या शारीरिक दृष्टि से खतरनाक चुनौती को लेकर व्यापक विमर्श को बढ़ावा दे सकती है। आईसी-814 विवाद उसी सप्ताह शुरू हुआ जिस सप्ताह कंगना रनौत की फिल्म 'इमरजेंसी' की रिलीज रोकी गई।

समकालीन इतिहास पर आधारित एक और फिल्म फरहान अख्तर की '120 बहादुर' की रिलीज से पहले वाले प्रमोशन आरंभ हो गए हैं। यह फिल्म कुमाऊं रेजिमेंट की चार्ली कंपनी (सी कंपनी, 13 कुमाऊं) के जबरदस्त अंतिम संघर्ष को दर्शाती है जो उसने 1962 में लद्दाख के रेजांग ला में किया था। यह दर्शाता है कि फिल्मकारों को ऐतिहासिक हकीकतों में कामयाबी नजर आती है। बहरहाल वास्तविक सत्य के करीब रहना एक बड़ी चुनौती है।

उदाहरण के लिए कंगना रनौत की फिल्म समस्याग्रस्त क्यों हुई? आमतौर पर हम यही उम्मीद करते कि फिल्म आसानी से रिलीज हो जाएगी और उन फिल्मों की श्रृंखला में शामिल हो जाएगी जिनमें गांधी परिवार को आड़े हाथों लिया जाता है और जो मोदी के दौर में फल-फूल रही हैं।चूंकि रनौत भारतीय जनता पार्टी (भाजपा) से सांसद हैं इसलिए आप उम्मीद कर सकते हैं कि फिल्म में इंदिरा गांधी का वह दौर दिखाया गया होगा जब वह सर्वाधिक आत्मघाती समय से गुजर रही थीं। खासतौर पर उस अवधि के दौरान जब वह संविधान को तोड़मरोड़ रही थीं।भाजपा को इस बार केवल इसलिए चुनावों में नुकसान उठाना पड़ा कि ऐसा माहौल बन गया था कि वह लोक सभा में बहुमत पाकर वही काम करना चाहती है। इसके जवाब में भाजपा का ब्रह्मास्त्र रहा है इंदिरा गांधी की अवमानना करना। उन्हीं इंदिरा गांधी की अधिनायकवादी छवि को सिने जगत की एक बेहतरीन अभिनेत्री फिल्म के रूप में पेश करे, इससे बेहतर क्या हो सकता है।

इसमें दो राय नहीं कि फिल्म पर सत्ताधारी दल के लोगों या उसका ध्यान खींचने वालों का प्यार बरसेगा, ढेर सारे ट्वीट किए जाएंगे, सराहना भरी समीक्षा होगी और कंगना के साथ सेल्फी सामने आएंगी। तो गड़बड़ी कहां हुई? मैं कह नहीं सकता कि फिल्म अच्छी है या बुरी क्योंकि मैंने केवल उसका ट्रेलर देखा है। यह एक बचकाने ढंग से अतिरंजित फिल्म नजर आती है जिसमें कंगना सहित कई कलाकार बहुत अधिक पाउडर लगाए हुए नजर आते हैं मानो मूल का एआई संस्करण हों।मुझे यह भी नहीं पता है कि क्या फिल्म जरनैल सिंह भिंडरांवाले को इसी नाम से दिखाया गया है या नहीं लेकिन उनकी भूमिका निभाता एक अभिनेता नजर आया जो पहले जेल से निकलता है और फिर सिखों के बीच भाषण देते हुए कांग्रेस को संबोधित करते हुए कहता है, 'तुम्हारी पार्टी वोट चाहती है और हम खालिस्तान चाहते हैं।'

इस बात ने सिख समुदाय को बेहद नाराज कर दिया है और शिरोमणि गुरुद्वारा प्रबंधक कमेटी (एसजीपीसी) भी विरोध कर रही है। फिल्म इसलिए दिक्कत में नहीं है क्योंकि इसमें इंदिरा गांधी को बुरा दिखाया गया है और उनके मुंह में वे बातें डाली गई हैं जो उन्होंने कभी नहीं कहीं।रनौत की फिल्म में इंदिरा गांधी यह कहती नजर आती हैं, 'इंदिरा इज इंडिया, इंडिया इज इंदिरा।' उन्होंने यह कभी नहीं कहा था। यह बात तत्कालीन कांग्रेस अध्यक्ष देवकांत बरुआ ने 1976 के जाड़ों में गुवाहाटी में अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी के सत्र में कहा था। वह आपातकाल का दौर था और चापलूसी की होड़ लगी थी। बरुआ ने यह बात कहकर अपनी विरासत को बदनाम कर दिया।

1980 के दशक के आरंभ में कई बार मैं नौगांव में उनके घर चला जाता था जहां वह राजनीति से संन्यास लेने के बाद अकेले समय बिता रहे थे। अपनी उस लापरवाही को लेकर वह काफी पश्चाताप करते थे। क्या श्रीमती गांधी ने खुद वैसा कुछ कहा था? जहां तक मेरी जानकारी है, ऐसा नहीं था। यकीनन अब जबकि रनौत अपनी फिल्म के ट्रेलर में ऐसा कर रही हैं तो यह फेक न्यूज ही है।

परंतु विरोध करने वाले कांग्रेस के लोग नहीं हैं। भिंडरांवाले का संदर्भ जरूरी है क्योंकि इस फिल्म में जिसे श्रीमती गांधी के जीवन पर आधारित बताया जा रहा है, में यह भी बताना होगा कि उन्होंने सिख अलगाववाद के साथ लापरवाही बरती और एक तरह से अपनी मौत को आमंत्रित किया। समकालीन इतिहास में इस बात के पर्याप्त प्रमाण हैं कि शुरुआती दौर में कांग्रेस, खासकर ज्ञानी जैल सिंह ने भिंडरांवाले को इस उम्मीद में प्रश्रय दिया कि वह एसजीपीसी के चुनावों में शिरोमणि अकाली दल को कठिनाई में डालेगा। यह कोशिश नाकाम रही लेकिन भिंडरांवाले एक बड़ी ताकत बनकर उभरा। फिल्म का संदेश है कि इंदिरा गांधी सत्ता की इस कदर भूखी थीं कि वह वोटों के लिए भिंडरांवाले से खालिस्तान का सौदा करने को तैयार थीं।एक पत्रकार के रूप में मैं 1983 की गर्मियों में भिंडरांवाले से दर्जनों बार मिला। मैं उस समय भी उससे मिला जब ऑपरेशन ब्लू स्टार में सेना की पहली टुकड़ी ने प्रवेश किया। मैंने कभी भिंडरांवाले को खालिस्तान की मांग करते नहीं सुना। मैंने किसी और को भी ऐसी मांग करते नहीं सुना। हम सभी पत्रकारों ने कभी न कभी उससे इस बारे में सवाल किया और वह रटा-रटाया जवाब देता, 'मैंने कभी खालिस्तान की मांग नहीं की और न ही कर रहा हूं। लेकिन अगर बीबी (इंदिरा गांधी) या दिल्ली दरबार मुझे खालिस्तान देता है तो मैं इनकार नहीं करूंगा।' इसमें सबक यह है कि आप अभी भी इंदिरा गांधी के मुंह में अपने शब्द डालकर बच सकते हैं लेकिन भिंडरांवाले की मौत के 40 साल बाद भी आप ऐसा करके बच नहीं सकते।

ज्यादातर फिल्मों और टेलीविजन सीरियल के मुश्किल में आने की एक वजह यह है कि वे यह लिखकर बचना चाहते हैं कि यह वास्तविक घटनाओं का काल्पनिक चित्रण है। ताकि आप अपनी पसंद के तथ्य चुनकर अपने ढंग की कहानी कह सकें और दर्शकों और सत्ताधारी वर्ग को प्रसन्न कर सकें लेकिन सुविधा के आधार पर तथ्यों और पक्षपातपूर्ण कहानी के मेल से एक खराब प्रोपगैंडा तैयार होता है।

सोनी लिव पर रॉकेट बॉयज के दो सीजन देखिए। इसमें होमी भाभा, विक्रम साराभाई जैसे वास्तविक नायकों का चयन किया गया और एपिसोड बीतने के साथ ही इसमें कल्पना शामिल होती गई। पहले दलित भौतिकशास्त्री मेघनाद साहा को एक मुस्लिम के रूप में दर्शाया गया जो भाभा से जलन का भाव रखता हो। इसमें सीआईए समेत अन्य षड्यंत्र सिद्धांतों को भी स्थान दिया गया।इस छेड़छाड़ का रचनात्मक छूट के नाम पर बेहूदा बचाव किया गया। सच यह है कि आज हम आज भी अपने नेताओं पर बनी फिल्मों या उनकी जीवनी में उन्हें केवल नायक के रूप में ही देखना चाहते हैं। हम यह

नहीं मानना चाहते कि हमारे नेताओं ने कभी कोई गलती भी की होगी। ऐसी गलती तभी स्वीकार है जब वह गांधी-नेहरू परिवार में किसी ने की हो।

आंबेडकर, शिवाजी, एम. करुणानिधि, बाला साहेब ठाकरे, झांसी की रानी, कांशी राम, भिंडरांवाले आदि पर ईमानदारी से फिल्म बनाना असंभव है। यह स्थिति पूरे भारतीय उपमहाद्वीप में है। यही वजह है कि इस क्षेत्र के कई प्रमुख लोगों की जीवनी विदेशियों ने लिखी। जिन्ना और भुट्टो की जीवनी कैलिफोर्निया विश्वविद्यालय के प्रोफेसर स्टैनली वोलपर्ट ने लिखी। गांधी पर भी एक विदेशी ने फिल्म बनाई। जब रिचर्ड एटनबरो ने एक बार नेहरू से कहा था कि वह गांधी पर फिल्म बनाना चाहते हैं तो उन्होंने कहा था- 'उन्हें देवता मत बनाना। उन्हें सारी कमियों के साथ वैसा ही दिखाना जैसे वह थे।' क्या आज ऐसी फिल्म पास होगी? राजनीति को भूल जाइए।खिलाड़ियों के जीवन पर बनी फिल्में भी ऐसे ही लिखी जाती हैं और खुद खिलाड़ी उनके सह-निर्माता होते हैं। सैन्य इतिहास, प्रमुख लड़ाइयों पर बनी फिल्में मसलन बॉर्डर से लेकर उड़ी और करगिल पर बनी तमाम फिल्मों के साथ भी यही बात है। हमारे यहां क्लिंट ईस्टवुड जैसे फिल्मकार नहीं हैं जिन्होंने 'फ्लैग ऑफ अवर फादर्स' जैसी फिल्म बनाई और फिर जापान के नजरिये से 'लेटर्स फ्रॉम आइवो जिमा' बनाई। भारत में युद्ध पर बनने वाली फिल्मों में पाकिस्तानियों को दाढ़ी वाला, मूर्ख, कट्टर धार्मिक और हास्यास्पद दर्शाया जाता है।देखना है कि फरहान अख्तर चीनियों को कैसे दिखाते हैं? हम इतने नाजुक हैं कि 'ओपनहाइमर' के एक प्रणय दृश्य में भगवत गीता का जिक्र हमें नागवार गुजरता है। यह बात समझी जा सकती है कि किसी भी फिल्मकार को ईमानदार सिनेमा बनाने में दिक्कत आती है।परंतु इसे काल्पनिक कहकर तथ्यों को अपने अनुरूप इस्तेमाल करते हुए कहानी को विश्वसनीय दिखाने की कोशिश रचनात्मक और बौद्धिक बेईमानी है। इससे इतिहास से छेड़छाड़ होती है, कुछ लोगों को मलिन किया जाता है और कुछ को महान बनाया जाता है जो ठीक नहीं। यकीनन इसके चलते कई बार फिल्म पर रोक भी लगती है। भले ही पूरा सत्ता प्रतिष्ठान आपके साथ हो|